भक्तिकाव्य के पुनर्मूल्यांकन की जरूरत

– डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

वर्तमान परिवेशगत दबाव के फलस्वरूप अतीत के मंथन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है जिसके अंतर्गत हम चिंतन–मनन के पश्चात् बीते हुए समय की धरोहर को जांचते और परखते हैं और साथ ही अपने समय से उसकी तुलना भी करते हैं। दरअसल यह सिलसिला व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, जीवनमूल्यों एवं कलामूल्यों आदि जीवन–जगत के कई स्तरों पर चलता है। धर्म, जीवन, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्र में भक्तिकाल के संतों, भक्तों, मनीषियों, चिंतकों, कवियों आदि ने अतीत के संदर्भ में वर्तमान को स्वानुभूति की कसौटी पर कसा। यही कार्य आगे चलकर आधुनिक काल में भी हुआ जहां कि धर्म और साहित्य की नई व्याख्याएं प्रस्तुत की गईं। परिवर्तन की धारा में विचारों और मूल्यों को लेकर टकराव की नौबत भी आयी, फिर भी पुराने विचारों और मान्यताओं को नया रूप प्रदान किया गया। भक्तिकाल में जहां 'जांति–पांति पूछै ना कोई, हरि को भजै सो हरि का कोई', 'साधो एक रूप सब मांही', 'जाति–पांति कुल धर्म बड़ाई, धन, बल, परिजन गुन चतुराई' कहकर समानता, सौहार्द और समन्वय का भाव पैदा किया गया वहीं आधुनिक काल में धर्म को कर्म से और साहित्य को राष्ट्र और समाज, प्रेम से जोड़ा गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकाल से लेकर आज तक वेद, उपनिषद्, गीता, पुरान आदि की समयानुसार नई व्याख्याएं प्रस्तुत की गईं। विज्ञान, मीडिया, बाजारबाद, सूचना तकनीकी के विस्फोट एवं पाश्चात्य विचारों की आंधी में भक्ति काल के मूल्यों और मान्यताओं की मीमांसा करना लाजिमी हो गया है। इसका कारण यह है कि हम यंत्रों के निरंतर संग्रह और उनकी परिधि में रहते हुए हम यंत्रवत् बनते जा रहे हैं। फलस्वरूप हमारे चिंतन–मनन, सोच–विचार, आचरण, व्यवहार, रहन–सहन, खान–पान आदि में काफी बदलाव आ रहा है। एक तरफ जीवन को आरामदायक बनाने के लिए विभिन्न साधनों और पूंजी का संग्रह हो रहा है तो दूसरी तरफ हमारी मानवीयता और संवेदना की पूंजी खाली और खोखली होती जा रही है। जयंशकर प्रसाद के शब्दों में कहूं तो 'सब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि'' जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समय और सत्ता का दबाव कुछ इस कदर बढ़ गया है कि मानवता खतरे में पड़ गई है। आतंकवाद

की काली छाया रोज सर पर मंडरा रही है। विगत कई वर्षों से कई दिल दहला देने वाली घटनाएं घट रही हैं लेकिन अभी हाल में घटित निठारी की अमानवीय घटना ने समय और समाज को बुरी तरह कलंकित कर दिया।

आज समय का दबाव कुछ इस कदर बढ़ गया है कि हमें विभिन्न कालों में से भक्तिकाल ही क्यों नजर आ रहा है? और हम उसी का मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन बार–बार कर रहे हैं। कारण साफ है कि उसमें कुछ न कुछ खास बात अवश्य है। वह है सहजता, सरलता, समानता, मानवता, दया, करुणा, अहिंसा, प्रेम, मुहब्बत, दीनता, एकनिष्ठता, ईमानदारी, दलित के प्रति करुणा, नारी की स्वतंत्रता, संतोष, त्याग, निष्कपटता, आदि के अलावा निराकार–साकार, राम–कृष्ण के प्रति भक्तिभाव एवं उनका शील, शक्ति और सौन्दर्य का रूप, जोकि सम्पूर्ण भारतीय जनमानस की चेतना में रचे–बसे ही नहीं है अपितु वे हमारी अस्मिता की पहचान भी हैं। भक्तिकाल के कवियों के सारे आग्रह मनुष्य, जीवन और जगत को संवारने के रहे हैं। उनकी सारी सोच और चिंताओं का केन्द्र मनुष्य रहा है। सभी ने 'गले राम की जेवडी', 'एक भरोसो एक बल', 'चरन कमल बंदौं', 'मेरे तो गिरधर गोपाल' के सहारे जलजलाती साम्राज्य एवं सामंतवादी व्यवस्था से टक्कर ली। गांधीजी ने भी तो ईश्वर–निष्ठा, सत्य, अहिंसा, आत्म एवं साधन–शुद्धि के द्वारा जीवन की सारी लड़ाई लड़ी। प्रश्न यह उठता है कि क्या स्वतंत्र भारत के राज्य–संचालन में उन्हें सर्वोपरि महत्व दिया गया? उत्तर स्वाभाविक है कि नहीं। यही कारण है कि आज तमाम तरह की समस्याएँ सिर उठाए खड़ी हैं।

'कामायनी' में प्रसादजी ने आध्यात्मिक और भौतिक मूल्यों के समन्वय पर जोर देते हुए विकास की बात की है। वस्तुतः हो यह रहा है कि हम मूल्यों की उपेक्षा करते हुए बाह्य सुख साधनों को जुटाने में संलग्न है। इस संसार को कागज की पुड़िया जानकर भी उसी में लिप्त हैं। घर में दाम बढ़ने पर भी उसकी और वृद्धि में लगे हुए हैं। मनोकामनाएं और वासनाएं दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। फलस्वरूप मन की माला गन्दी होती जा रही है। यह सही है कि प्रत्येक युग के समाज में अच्छाइयां और बुराइयां रही हैं। बाबा तुलसीदास ने भी कहा है 'जड़–चेतन गुन–दोष मय, विस्व कीन्ह करतार'। अब सवाल यह उठता है कि क्या हम बुराइयों का ही वरण करें? यहां पुनः कामायनी की पंक्तियां याद आती हैं जहां काम मनु से कहता है, 'सौंदर्य जलधि से भर लाए केवल तुम अपना गरल पात्र'। दरअसल आज हालत ऐसी

हो गई है कि जीवन के हर मोड़ पर हमें भक्त कवि याद आते हैं। 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर, 'सार–सार को गहि रहे थोथा देहि उडाय', 'ढाई आखर प्रेम का, 'यह तो घर है प्रेम का', 'मानुष पेम भयो बैकुण्ठी', 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' आदि पंक्तियाँ मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हुए सच्चे और बेहतर इंसान बनने पर जोर देती हैं। इसके साथ ही जहां सूर राज वैभव से परिपूर्ण मथुरा नगरी का परित्याग कर ग्राम्य जीवन की महत्ता पर बल देते हैं वहीं पर मीरा सामंती व्यवस्था की चूलों को झकझोर कर नारी के मुक्त जीवन का संदेश देती हैं। भक्त कवियों ने हिंदू–मुस्लिम, राजा–प्रजा, गरीब–अमीर, छूत–अछूत, ऊंच–नीच आदि सामाजिक भेदभाव की भर्त्सना कर समता और सद्भाव पर जोर दिया जिनके लिए मानवीय संबंधों में प्रेम और मानवता ही सर्वोपरि रही है।

इतना ही नहीं, भक्ति आंदोलन के साथ कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि ने भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य के विकास को एक नई गति प्रदान की। इन कवियों ने सामंती संस्कृति को नकारते हुए जनसंस्कृति के उत्थान पर बल दिया। जहां जायसी ने अलाउद्दीन खिलजी के दम्भ को चूर–चूर करते हुए मुट्ठी भर राख का दर्शन कराया वहीं पर कबीर ने समाज के मठाधीशों पंडितों और मुल्लाओं के कर्मकाण्डों को खुली चुनौती दी। एक तरफ जहां तुलसी ने अपने राम के भरोसे सारी सुख–सुविधाओं का परित्याग किया तो वहीं दूसरी तरफ सूर और मीरा ने सामंती व्यवस्था में नारी मुक्ति की नई डगर दिखाई।

कबीर की सम्पूर्ण चेतना में उनके राम हैं। उनका निर्माण जिन घटकों से हुआ है उनमें सबसे प्रमुख काल है जो कि सम्पूर्ण भक्ति काव्य में समाहित है। उन्होंने उस समय के सांसारिक जीवन के व्यापक क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए अपने जीवनानुभवों से मानवीय मूल्यों का निरूपण किया। वे "साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप, जाके हिरदय साच है ताके ह्रदय आप' के द्वारा पहले मनुष्य के मन को साफ कर एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें भेदभाव के लिए कोई स्थान न हो। 'कबीर' शीर्षक पुस्तक में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सबसे पहले उन्हें भक्त मानते हैं और उनकी सर्वाधिक लक्ष्य होने वाली विशेषताओं का उल्लेख करते हैं– (१) सादगी और सहजभाव पर निरंतर जोर देते रहना, (२) बाह्य धर्माचारों की निर्मम आलोचना, और (३)

सब प्रकार के विरागभाव और हेतुप्रकृतिगत अनुसन्धिता के द्वारा सहज ही गलत दिखने वाली बातों को दुर्बोध्य और महान बना देने की चेष्टा के प्रति वैर–भाव। कबीर अपने इन गुणों के कारण आम जनता के नेता और साथी बन गए। तुलसी ने भी नवधा भक्ति के प्रसंग में 'आठवं जथालाभ संतोषा, सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा। नवम सरल सब सन छलहीना, मम भरोस हियं हरष न दीना।' कहकर भक्ति के स्वरूप को एक नूतन आयाम दिया।

दरअसल कबीर जहाँ अपने लोकानुभवों से एक नए लोक को स्थापित कर लोक को शास्त्र में उतारना चाहते थे वहां तुलसी शास्त्र को लोक में। कबीर की चिंता के केन्द्र में वर्तमान था जबकि तुलसी वर्तमान और भविष्य दोनों के प्रति चिंतित थे। तुलसी ने जगह–जगह समाज के निचले तबके का साथ दिया है और उनकी सोच में भी भूखा आदमी बराबर रहा है क्योंकि वे बार–बार दरिद्र कोउ दुःखी न दीना' की बात करते हैं। फिर भी तुलसी कबीर, रैदास आदि की तरह बहुजन समाज के प्रतीक नहीं बन सके। दरअसल जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का कबीर की दृष्टि में कोई स्थान नहीं था। वैसे यहां तुलसी भी भक्ति के क्षेत्र में इसी तरह की बात करते हैं। आज जिस दलित और नारी–विमर्श की चर्चा जोरों पर हो रही है वहां हम कबीर को दलित के साथ तो जोड़ते हैं लेकिन नारी के संबंध में चुप्पी साध लेते हैं। तुलसी ने तो प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल नारी के गुणों और दोषों का वर्णन किया है। कबीर व्यक्ति मन को साफकर उसमें मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे। काम, क्रोध, मद, लोभ, आदि को उन्होंने मनुष्य का शत्रु बताया। तुलसी ने भी मानवीय विकारों की निंदा की है लेकिन उनकी दृष्टि समाज और समन्वय पर अधिक रही। दोनों ही मूल्यों के आग्रही थे।

कबीर या अन्य संत लोकधर्म के संस्थापक थे। ये बाह्याचारों एवं आपस के भेदभाव विरोध करते हुए मूलतः प्रेम के आधार पर गुरु की कृपा से ईश्वर प्राप्ति की कामना करते थे।

> साधो एक रूप सब माहीं।
> अपने मनहिं बिचारि कै देखो और दूसरो नाहीं।।
>
> एकै त्वचा रुधिर पुनि एकै विप्र सूद के माहीं।
> कहीं नारि कहीं नर होइ बोलै गैब पुरुष वह नाहीं।।

सब्द पुकारि सत्त में भाखौं अंतर राखौं नाहीं।
कहैं कबीर ज्ञान जेहिं निरमल बिरलै ताहि लखाहीं।।

कबीर की दृष्टि बिना किसी भेदभाव के मानव की समानता पर रही। उन्होंने समस्त धर्म–मतों में निहित व्यापक मानवीय मूल्यों को स्वीकार करने की बात की। वस्तुतः कबीर के चिंतन पर कई विचारधाराओं का प्रभाव है। जैसे उनकी भाषा को खिचड़ी भाषा कहा जाता है वैसे यह बात उनके विचारों और व्यक्तित्व पर भी लागू होती है। वर्तमान संदर्भों में कबीर के दोहों और पदों की व्यावहारिक समीक्षा कर उन्हें आत्मसात् कर आचरण में उतारने की जरूरत है।

सूफी लोगों का प्रवेश हमारे देश में उस समय हुआ जब मध्ययुग का आरंभ हो चुका था। अपनी स्थिति पर एक बार पुनर्विचार करने की चेष्ठा में प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थों पर विभिन्न भाष्यों की रचना आरंभ हो गई थी। सूफियों के इस समय आ जाने के कारण सांस्कृतिक विकास में एक नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ और उन्होंने इसके निर्माण कार्य में योगदान भी दिया। इन्होंने भारतीय विचारधारा, धार्मिक आंदोलनों, समाज के नव विकसित रूप और लोकभाषा–साहित्य पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा। जीवन में सादगी, प्रेम, सदभाव की मिशाल कायम करते हुए सूफियों ने राम–रहीम की एकता को स्थापित करने में व्यक्तिगत एवं साहित्यिक दोनों स्तरों पर स्तुत्य कार्य किया। सूफी कवियों में जायसी ने लोक कथा के माध्यम से लोकजीवन की सम्पूर्ण संस्कृति का ही गुणगान नहीं किया अपितु मानवीय मूल्यों की स्थापना भी की। इनके जीवन का आधार प्रेम, भाई–चारा, सेवाभाव आदि था–

"तीन लोक चौदह खंड सबै परै मोहि सूझि।
पेम छांडि किछु औरु न लोना जौं देखौं मन बूझि।।"

आगे वे कहते हैं "सेवा मइं जाकर मन लागू। दिन–दिन बाढ़ै अधिक सोहागू।" इस प्रकार जायसी ने 'पद्मावत' में लोक और परलोक की कथा के माध्यम से जीवन–जगत की व्यापक संस्कृति एवं नाना कार्य–व्यापारों का विशद वर्णन किया है। इनकी रचनाओं में भारतीय लोक संस्कृति और जीवन–मूल्यों का विशद एवं व्यापक चित्रण हुआ है।

सूरदास का कृष्ण काव्य ग्रामीण जीवन–व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें भक्तिभाव के साथ–साथ प्रजातांत्रिक मूल्यों, लोक एवं चरागाही संस्कृति, सगुण–निर्गुण द्वंद्व आदि का जीवंत चित्रण हुआ है। कृष्ण जीवन के विविध

रूपों द्वारा उनके शील, शक्ति और सौन्दर्य का अदभुत गुणगान किया गया है। कृष्ण के बाल्यकाल का वह मनोरम रूप आज की भौतिक संस्कृति से गायब होता जा रहा है। सूर काव्य में मां के वात्सल्य भावों की तरलता और प्यार–दुलार का अद्‌भुत रूप है। मित्रता में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। नारी स्वतंत्रता और प्रेम की उन्मुक्तता है। मैनेजर पाण्डेय ने "सूरदास का काव्य : अभिव्यक्ति का स्वरूप" लेख में सूरकाव्य के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के चार मुख्य पक्ष बताए हैं : (१) काव्यवस्तु का संकल्पात्मक बोध, (२) रूपलीला और भावों की संकल्पात्मक अनुभूति, (३) संगीत संवेदना, और (४) सामंजस्य ज्ञान।" सूर की रचनाओं का कालान्तर में काव्य, संगीत, चित्रकला आदि के रूप में विकास हुआ।

कला में मनुष्य के अनुभव के वैयक्तिक, सामाजिक और मानवीय तीनों पक्ष होते हैं जोकि हर युग में मनुष्य की मनुष्यता से जुड़कर अपनी सार्थकता बनाए रखते हैं। सूर की कविता हमारे जातीय जीवन और सांस्कृतिक परंपराओं को व्यक्त करने वाली कविता है। वह शास्त्र और सत्ता के आतंक से मुक्ति दिलानेवाली कविता है जोकि आने वाले युगों में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए रखेगी।

मध्यकाल में "कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो" कहकर तुलसीदास का स्वागत लोगों ने भक्त के रूप में किया। कालान्तर में उन्हें कवि, सुधारक, चिंतक, मनीषी, समन्वयवादी, भारतीय संस्कृति के पुरोधा आदि न जाने कितने रूपों में जाना गया और आज भी जाना जा रहा है। तुलसी ने जीवन–जगत की व्यापक एवं गहन अनुभूतियों को अपने साहित्य का विषय बनाया जिसमें व्यक्ति, समाज, धर्म, राजनीति, दर्शन, आदि न जाने कितने संदर्भ समाहित हैं। यही कारण है कि तुलसी के मानस का गुटका आज भी उसी चाव से भारत में ही नहीं अपितु पता नहीं विश्व के कितने देशों में पढ़ा जा रहा है। कोई उसे दुःख, शोक, श्रम दूर करने के लिए पढ़ता है तो कोई स्वान्तः सुखाय, ज्ञान, धर्म आदि नाना सांसारिक विषयों की जानकारी के लिए।

तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य रूप के माध्यम से भक्ति, कर्म, ज्ञान, संघर्ष, प्रेम, समानता, सहबन्धुत्व आदि की शिक्षा दी। यहां ऐश्वर्य और भोग की भौतिकवादी व्यवस्था को नकार कर त्याग को महत्व दिया गया। राम की कथा भले ही राज परिवार की है लेकिन यहां सभी के सभी त्यागी हैं।

"भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी।।
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।।

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी।।'

तुलसी ने भरत की अनन्यता और आत्मत्याग इन दो गुणों का जबरदस्त वर्णन किया है। वस्तुतः वे स्वयं भी अपने प्रभु के प्रति अनन्य भाव रखते हैं। 'विनयपत्रिका' में उनकी अनन्यता का बेजोड़ चित्रण हुआ है,

"आरत–अनाथ–नाथ कोशलपाल कृपाल,
लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं।
बूझ्यो ज्योंही, कह्यौ "मैं हूं चेरो ह्वैहों रावरो जू,
मेरो कोऊ कहूं नाहिं, चरन गहत हौं।"

बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा है कि "तुलसीदास एक सच्चे भारतीय थे। उनकी शिक्षा और संस्कृति का रूप भी भारतीय था किंतु उनकी विचारधारा केवल भारतीय नहीं थी। सत्य किसी जाति, धर्म वा देश विशेष की वस्तु नहीं, वह शाश्वत एवं सर्वदेशीय है और उसे किसी भी माध्यम द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।"

आज के भौतिक युग में उनका अनन्य भाव, आत्मत्याग, समन्वय, मर्यादा–पालन, कर्म–संघर्ष आदि जैसी अन्य कई प्रवृत्तियों की महत्ता बढ़ गई है। तुलसी ने 'सीयराममय सब जग जानी' कहकर अनोखे समाजवाद की स्थापना कर दी। वे एक चरित्रवान महापुरुष थे जिनके साहित्य और विचार में मूल्य और मर्यादा सर्वत्र विद्यमान है जिनका आज पग–पग पर अवमूल्य न हो रहा है।

मध्यकाल के भक्त और संत कवियों में मीरा का विशिष्ट स्थान है। इनका रचनागत वितान अन्य भक्त कवियों की अपेक्षा छोटा है। मीरा की भक्ति प्रवाह में निजी दुख–दैन्य 'रहिमन अंसुआ नयन डरि, हिय दुःख प्रकट करेहि' की भांति सहज भाव से आ गया है। लेकिन अभिव्यक्ति में आत्मबल है क्योंकि उनको अपने सांवरिया के प्रेम धन पर अडिग विश्वास है। यह अमूल्य वस्तु उनको अपने गुरु से मिली है जोकि विद्या धन की भांति बढ़ती है। इसे कोई चुरा नहीं सकता। तत्कालीन व्यवस्था में मीरा ने परतंत्र नारी को मुक्ति का

मार्ग दिखाया। उस जमाने में नारी होकर परिवार और समाज से लड़ना एक बहुत बड़ी बात थी। परिवार और समाज द्वारा आज भी नारी को तरह–तरह की प्रताड़नाएं दी जा रही हैं जिन्हें वह मजबूर होकर सह रही है।

कडवा बोल लोक जग बोल्या करस्यां म्हारी हांसी।
मीरां हरि रे हाथ बिकाणी जणम जणम री दासी।

विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'मीरा और गिरधर नागर' नामक लेख लिखा है– "कबीर, सूर, तुलसी, जायसी की कविताओं में उनके धार्मिक मत का प्रचार उद्देश्य है। मीरा की रचनाओं में धार्मिक मतवादों की यह भूमिका नहीं। वह धार्मिकता को अनुभूति–अभिव्यक्ति का सहारा भर बनाती हैं। वह चाहे जिस मतवाद का सहारा लें, प्रमुखता विरह या संयोग की ही होती हैं इस दृष्टि से उन्हें भक्तिकालीन रचनाकारों में विशिष्ट माना जाना चाहिए।"

भक्तिकाल के प्रमुख एवं अन्य कवियों ने अपने प्रभु के प्रति अनन्य भक्तिभाव रखते हुए जन कल्याण की लड़ाई लड़ी। उनके संघर्ष के केन्द्र में मनुष्य है। उसको सुधारने, संवारने और सजाने में उन्होंने अपनी सारी ऊर्जा लगायी। भक्तिकाल जन संस्कृति की चेतना का काल है जिसने समग्र भारत को एकता के सूत्र में बांधकर मानव को मानव से जोड़ने का कार्य किया। जहां त्याग है, भोग नहीं। जहां मूल्यों के लिए तिल–तिल लड़ा गया। नगर के स्थान पर गांव को महत्त्व दिया गया। प्रजातंत्र के सारे मूल्यों की स्थापना की गई।

भक्तिकाल की रचनाओं को घनानंद के शब्दों में कहें तो "रावरो रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यो–ज्यों निहारियै।" वर्तमान समय को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि आने वाले समय में भक्तिकाल की रचनाओं की प्रासंगिकता और जीवंतता और बढ़ती जाएगी। आवश्यकता इस बात की है कि हमें भक्तिकाल की रचनाओं को भक्तिभाव से न पढ़कर समयानुकूल उनकी नवीन व्याख्या करते हुए उसमें प्रतिपादित सिद्धांतों को सार्वभौमिक विचारों की दृष्टि से देखना चाहिए।

तुलसीदास : एक प्रामाणिक सर्वेक्षण

सम्पादक

डॉ० स्वामी भगवदाचार्य

प्रकाशक – सनातन धर्म परिषद, लखनऊ

तुलसीदास : एक प्रामाणिक सर्वेक्षण

सम्पादक – डॉ० स्वामी भगवदाचार्य
प्रकाशक – सनातन धर्म परिषद्, लखनऊ

कापीराइट : सम्पादकाधीन

प्रथम संस्करण : २०१२
मूल्य : रु० ५००/– (पाँच सौ रुपये)

सम्पर्क सूत्र –

सनातन धर्म आश्रम,

सनातन नगर, चिनहट, लखनऊ (उ०प्र०)
श्री हनुमान गढ़ी मंदिर, अयोध्या नगर, उल्हास नगर–४२१००३ (मुंबई)
दूरभाषः ०६४५२२७०३७०

तुलसीधाम,
तुलसी जन्मभूमि,
राजापुर (सूकरखेत्त) गोण्डा, (उ०प्र०), भारत

मुद्रक : ज्ञान प्रिन्टर्स, २०७, २०८,
लेखराज मार्केट–२, इन्दिरा नगर,
लखनऊ–२२६०१६,
दूरभाष : ०५२२–३०४३५२